जैन परम्परा में बाहुबलि

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत और बाहुबलि के उदात्त जीवन वृत्त जैनधर्म की दोनों ही परम्पराओं में समादृत रहे हैं। फिर भी अपेक्षाकृतरूप से दिगम्बर परम्परा में बाहुबलि के प्रति विशेष आदरभाव देखा जाता है। सहस्राब्दी पूर्व दक्षिण में श्रवणबेलगोल में स्थापित गोम्मटेश्वर बाहुबलि की अद्वितीय विशाल प्रतिमा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि दिगम्बर परम्परा में बाहुबलि को कितना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। आज भी न केवल अनेक दिगम्बर जैन तीर्थों एवं मन्दिरों में बाहुबलि की प्रतिमाएँ उपलब्ध होती हैं, अपितु वे तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के समान ही पूजित भी हैं, यह सब उनके प्रति उस परम्परा में, जो बहुमान और श्रद्धा है, उसी का प्रतीक है। जबकि श्वेताम्बर परम्परा के तीर्थों एवं मन्दिरों में बाहुबलि की प्रतिमाओं का प्राय: अभाव ही देखा जाता है। यद्यपि आबू के विमलवसहि मन्दिर में, शत्रुंजय (पालीताना) के आदिनाथ मन्दिर में और कुम्भारिया के शांतिनाथ मन्दिर में बाहुबलि की अधोवस्त्र युक्त ११-१२वीं शताब्दी की कुछ प्रतिमाएँ हैं। इसी प्रकार जैसलमेर के ऋषभदेव जी के मन्दिर में भी भरत और बाहुबलि की कायोत्सर्ग मुद्रा में सम्वत् १४३६ की मूर्तियाँ हैं (देखिये जैन लेख संग्रह, भाग ३, पृष्ठ ९४) फिर भी वे जिन प्रतिमा के समान पूजित नहीं हैं। इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा तप-त्याग और साधना के अनुपम आदर्श बाहुबलि के प्रति आदरभाव रखते हुए भी उन्हें वह गौरव नहीं दे सकी, जैसाकि उन्हें दिगम्बर परम्परा में प्राप्त है। इससे विपरीत श्वेताम्बर परम्परा का झुकाव निष्काम कर्मयोगी भरत के प्रति अधिक देखा जाता है। श्वेताम्बर आचार्यों ने भरत के जीवन चरित्र को काफी उभारा है। आखिर ऐसा क्यों हुआ ? हमारी दृष्टि में इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है।

भरत और बाहुबलि, दो भिन्न जीवन दृष्टियाँ

वस्तुत: भरत और बाहुबलि के जीवन-वृत्त दो भिन्न जीवन दृष्टियों पर स्थित हैं। भरत का आदर्श निष्काम कर्मयोग का आदर्श है, उसका जीवन एक अनासक्त कर्मयोगी का जीवन है, जो जल में रहे हुए कमल के समान अलिप्त भाव से संसार में रहकर अपने सांसारिक दायित्वों का निर्वाह करता है। बाह्य दृष्टिकोण से देखने पर तो वह आकण्ठ भोगों में डूबा हुआ है, अपने चक्रवर्तित्व के पद की रक्षा के लिए वह भाई से भी युद्ध ठान बैठता है, यही नहीं उस पर चक्र भी चला देता है। किन्तु भीतर से वह उतना ही अनासक्त और विनम्र भी है। यही कारण है कि बाहुबलि आदि सभी भाइयों के दीक्षित होने पर उसका मन पश्चात्ताप और अन्तर्वेदना से भर जाता है। उसे अपने कृत्य पर आत्मग्लानि होती है और छोटे भाइयों के चरणों में उसका मस्तक विनम्र भाव से श्रद्धापूर्वक झुक जाता है। विमलसूरि के पउमचरिउ के अनुसार तो दीक्षा लेने को उद्यत बाहुबलि से वह यहाँ तक कह देता है कि भाई अपनी राज्यलक्ष्मी को वापस सम्भालो और दीक्षा मत लो। किन्तु बाहुबलि उसके आग्रह को अस्वीकार कर देते हैं और वह खिन्नमना अयोध्या को लौट जाता है। उसका आदर्श अनासक्त कर्मयोग का आदर्श है। बाहर तो वह कैवल्य लाभ के कुछ समय पूर्व तक अपने सांसारिक दायित्वों के निर्वाह में लगा हुआ है किन्तु उसकी साधना अन्दर ही अन्दर चलती रहती है। कल्पसूत्र की कुछ टीकाओं में तो भरत की इस अनासक्त जीवन दृष्टि को एक कथा के द्वारा स्पष्ट भी किया गया है।

भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में एक स्वर्णकार भरत के भावी जन्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट करता है। ऋषभदेव भरत की इसी जीवन में मुक्ति की घोषणा करते हैं। किन्तु स्वर्णकार का मन आश्वस्त नहीं होता है, वह ऋषभदेव के निर्णय को पक्षपातपूर्ण मानता है। भरत उसे अपनी निष्काम जीवन दृष्टि को समझाने के लिए एक घटनाचक्र खड़ा करते हैं। स्वर्णकार को ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत की निन्दा के अभियोग में मृत्युदंड दिया जाता है। उस दंड से बचने का एक ही उपाय है, वह यह कि स्वर्णकार तेल से पूर्ण भरे हुए कटोरे को लेकर अयोध्या का परिभ्रमण करे; शर्त यह है कि रास्ते में तेल की एक भी बूँद न गिरे, यदि एक भी बूंद गिरी तो साथ चलने वाले सैनिक वहीं उसका सिर धड़ से अलग कर देगें। किन्तु यदि वह एक भी बूंद बिना गिराये राजभवन में लौट आएगा, तो उसका मृत्युदण्ड निरस्त कर दिया जाएगा।

भरत उस दिन अयोध्या को विशेष रूप से सजाते हैं। अनेक चौराहों पर नाटक आदि का आयोजन करवाते हैं। जब वह लौटकर पहुँचता है तो भरत उससे पूछते हैं- भाई, आज नगर में कहाँ क्या देखा ? प्रत्युत्तर में स्वर्णकार कहता है - यद्यपि मैं नगर परिभ्रमण कर रहा था, किन्तु मुझे तो मौत ही दिखाई दे रही थी अत: सब कुछ दृष्टि के समक्ष रहते हुए भी अनदेखा ही रहा। उसके इस प्रत्युत्तर के आधार पर भरत उसके सामने अपनी जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार तू एक जीवन की मृत्यु के भय से नगर परिभ्रमण करते हुए उसके आकर्षणों के प्रति पूर्ण उदासीन रहा, वैसे ही मैं भी अनंत जीवनों की मृत्यु का द्रष्टा होकर, संसार के व्यवहार करते हुए भी उसके प्रति उदासीन हूँ। भरत बाहर से संसार में होते हुए भी अन्तर्मन से उससे वैसे ही अलिप्त हैं, जैसे कमल का पत्र जल में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहता है। यही कारण है कि वे आरिसा भवन में ही कैवल्य प्राप्त कर लेते हैं। कैवल्य की उपलब्धि के लिये वे न तो कोई कठोर साधना करते हैं और न गृहस्थ जीवन का त्याग करते हैं। जो शृंगार के लिए आरिसा भवन में पहुँचता है, वही कैवल्य की ज्योति से जगमगाता हुआ श्रमण के रूप में वहाँ से बाहर निकलता है। भरत का श्रामण्य कैवल्य का परिणाम है, कैवल्य की साधना नहीं। उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन प्रवृत्ति में भी निवृत्ति का जीवन है। उनके लिए बाह्य पदार्थ नहीं, मूर्च्छा ही वास्तविक परिग्रह है। चूँकि यह बात श्वेताम्बर परम्परा के अनुकूल थी अत: उसे भरत का जीवनादर्श अधिक अनुकूल लगा। यही कारण था कि श्वेताम्बर आचार्यों ने भरत के जीवन चरित्र पर अपनी कलम को अधिक चलाया है।

इसके विपरीत बाहुबलि की जीवन-दृष्टि भिन्न है, वे पूरे मन से राजा हैं। राजा का गौरव उनके मन में है, यही कारण है कि वे बड़े भाई की अधीनता के प्रस्ताव को ठुकराकर युद्ध के लिये तैयार हो जाते हैं और बड़े भाई का राजलिप्सा के मद में युद्ध की नैतिकता को भंग कर छोटे भाई के वध के लिए उद्यत हो जाना ही उनके विराग का कारण बन जाता है। वे श्रमण बन जाते हैं, फिर भी उनके मन से 'राजा का गौरव' समाप्त नहीं होता है। भरत की भूमि पर खड़े रहने या छोटे भाइयों के नमन करने के प्रश्न उनके मन को कचोटते रहते हैं। यद्यपि बाहुबलि ने युद्ध भी जीता है और अपना गौरव भी अक्षुण्ण रखा, फिर भी भीतर के युद्ध में उन्हें सहज विजय नहीं मिलती है। उनका जीवन कठोर निवृत्ति प्रधान साधना का जीवन है। ध्यान और कायोत्सर्ग की साधना का ऐसा कोई दूसरा उदाहरण देख पाना कठिन है। जिसके शरीर को लताओं ने आच्छादित कर लिया हो, चींटियों ने जिस पर अपने वल्मीक बना लिये हों, फिर भी जो ध्यान में अचल और अकम्प है, कितनी कठोर साधना है। बाहुबलि का जीवन निवृत्तिपरक कठोरतम साधना का उच्चतम आदर्श है। यही कारण था कि कठोर साधना के आदर्श के प्रति श्रद्धान्वित दिगम्बर परम्परा में बाहुबलि के प्रति अपेक्षाकृत अधिक बहुमान देखा जाता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि श्वेताम्बर परम्परा में बाहुबलि के प्रति या दिगम्बर परम्परा में भरत के प्रति आदर-भाव नहीं रहा है। यह तो मात्र अपेक्षाकृत विशेष रुझान की बात है। वैसे तो दोनों परम्पराओं में दोनों के ही प्रति समादर भाव है। फिर भी हमें इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि दोनों की साधना पद्धति भिन्न-भिन्न है। यदि शास्त्रीय भाषा में कहना हो तो जहाँ भरत निश्चय प्रधान साधना के प्रतीक हैं वहीं बाहुबलि व्यवहार प्रधान साधना के प्रतीक हैं। भरत की साधना की यात्रा निश्चय से व्यवहार की ओर है, तो बाहुबलि की साधना की यात्रा व्यवहार से निश्चय की ओर है।

जैन साहित्य में बाहुबलि की कथा का विकास

श्वेताम्बर परम्परा के आगमग्रंथों में स्थानांगसूत्र में बाहुबलि के शरीर की ऊँचाई के सम्बन्ध में तथा समवायांग में बाहुबलि की आयुष्य के सम्बन्ध में उल्लेख अवश्य उपलब्ध हैं, किन्तु वे उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई विस्तृत जानकारी प्रदान नहीं करते हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में भरत की षट्खण्ड विजय यात्रा का विस्तार से वर्णन है तथा कल्पसूत्र में ऋषभदेव का जीवन चरित्र दिया गया है, किन्तु उनमें बाहुबलि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा का सम्पूर्ण आगम-साहित्य बाहुबलि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में मौन है।

यद्यपि श्वेताम्बर आगम-साहित्य की टीकाओं में आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यकभाष्य, विशेषावश्यक भाष्य, आवश्यक चूर्णि, निशीथ चूर्णि, कल्पसूत्रवृत्ति, आचारांग टीका और स्थानांग टीका में बाहुबलि का जीवनवृत्त उल्लिखित है। कथा-साहित्य में विमलसूरि के एउमचरिउ में, संघदासगणि कृत वसुदेवहिण्डि में, शीलांक के चउपन्न महापुरिसचरियं में एवं हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चरित्र में भी बाहुबलि का जीवनवृत्त सविस्तार से उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त भरत चक्रवर्ती पर लिखे गये भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति में तथा शत्रुंजयमाहात्म्य आदि ग्रन्थों में बाहुबलि के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त है। जिनरत्न कोश के अनुसार बाहुबलि पर दो स्वतन्त्र ग्रंथ 'बाहुबलि चरित्र' के नाम से भी प्राप्त हैं, जिनमें एक के लेखक भट्टारक चारुकीर्ति हैं जो कि दिगम्बर परंपरा के हैं। दूसरे के लेखक अज्ञात हैं, जो कि संभवत: श्वेताम्बर परम्परा के हो सकते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में पुण्यकुशलगणि की भरत बाहुबलि महाकाव्य नामक एक अत्यन्त सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण कृति है, यह संस्कृत भाषा में है। इसके अतिरिक्त शालिभद्रसूरि का भरत-बाहुबलि रास (१३वीं शताब्दी) एवं अमीऋषिजी का भरत बाहुबलि चौखलिया, समकालीन आचार्य तुलसी का भरतमुक्ति काव्य क्रमश: प्राचीन गुजराती, राजस्थानी एवं हिन्दी में श्वेताम्बर आचार्यों की प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनमें बाहुबलि का जीवनवृत्त उल्लिखित है।

दिगम्बर परम्परा के आगम-स्थानीय साहित्य में कुन्दकुन्द के भाव पाहुड़ में बाहुबलि को मान कषाय था, मात्र इतना उल्लेख है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा के आगमिक साहित्य में बाहुबलि के जीवनवृत्त का उल्लेख हमें प्राप्त नहीं हुआ है, यद्यपि दिगम्बर परम्परा का पौराणिक साहित्य विस्तार से बाहुबलि की यशोगाथा गाता है। हरिषेण के पद्मपुराण, स्वयम्भू के पउमचरिउ, जिनसेन के आदिपुराण, रविषेण के पद्मपुराण, पुन्नाटसंघीय जिनसेन के हरिवंश पुराण आदि में बाहुबलि का जीवनवृत्त वर्णित है।

बाहुबलि की कथा, समानता और अन्तर

बाहुबलि के जीवनवृत्त में जिन उल्लेखनीय प्रसंगों का चित्रण श्वेताम्बर आचार्यों ने किया है, वे दो हैं - एक भरत और बाहुबलि के युद्ध का प्रसंग और दूसरा बाहुबलि की साधना और कैवल्य लाभ का प्रसंग। भरत ने दूत के द्वारा अपने भाइयों को अपनी अधीनता को स्वीकार करने का सन्देश भेजा। शेष भाई भरत के इस अन्याय के सम्बन्ध में योग्य निर्णय प्राप्त करने पिता ऋषभदेव के पास पहुँचते हैं और अन्त में उनके उपदेश को सुनकर प्रबुद्ध हो, दीक्षित हो जाते हैं। किन्तु बाहुबलि स्पष्टरूप से भरत को चुनौती देकर युद्ध के लिए तत्पर हो जाते हैं। बाहुबलि ने भरत के सुवेग नामक दूत को जो तर्क, प्रत्युत्तर दिये हैं, वे बहुत ही सचोट, युक्तिसंगत एवं महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में आवश्यकचूर्णि, चउपन्न महापुरिस-चरियं तथा त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के प्रसंग निश्चय ही पठनीय हैं। वह कह उठता है, क्या भाई भरत की भूख अभी शांत नहीं हुई है ? अपने लघुभ्राताओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के राज्य को छीनकर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ है ? भाई भरत को कह देना कि मैं उसी पिता की सन्तान हूँ, जिसका वह है । व्यंग्य और तार्किकता दानों ही दृष्टियों से इन प्रसंगों में श्वेताम्बर आचार्यों का रचना कौशल अद्वितीय है । सुवेग को राज्य सभा से बाहर निकलते हुए देखकर नागरिक किस तरह काना-फूसी करते हैं इसका चित्रण निश्चय ही रोमांचक है ।

श्वेताम्बर आचार्यों में संघदासगणि ने वसुदेवहिण्डि में, जिनदासगणि ने आवश्यकचूर्णि में, आचार्य शीलांक ने चउपन्नमहापुरिस चरियं में और हेमचंद्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में सेना के परस्पर युद्ध का उल्लेख नहीं किया है । यद्यपि विमलसूरि के पउमचरिय में, शालिभद्रसूरि के भरतेश्वर बाहुबलि रास में एवं पुण्यकुशलगणि के भरत बाहुबलि काव्य में सेना के परस्पर युद्ध का उल्लेख है । दिगम्बर परम्परा में आदिपुराण के कर्ता-जिनसेन ने भी सेनाओं के युद्ध का उल्लेख नहीं किया, किन्तु पुन्नाटसंघीय जिनसेन के हरिवंश पुराण में रविषेण के पद्मपुराण में सेनाओं के मध्य युद्ध का उल्लेख है । इस प्रकार दोनों ही परम्पराओं में दोनों ही प्रकार के उल्लेख प्राप्त हैं, यद्यपि प्राचीन एवं मध्य काल के श्वेताम्बर आचार्यों की रचनाओं में विमलसूरि के अपवाद छोड़कर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक सेनाओं के परस्पर युद्ध का उल्लेख नहीं है । इसके विपरीत दिगम्बर परम्परा में आदिपुराण के कर्ता जिनसेन को छोड़कर ११-१२वीं शताब्दी तक के शेष सभी आचार्यों ने सेनाओं के परस्पर युद्ध का उल्लेख किया है । इस प्रकार जहाँ मध्यकाल के श्वेताम्बर लेखक भरत और बाहुबलि के मध्य अहिंसक युद्ध का उल्लेख करते हैं, वहाँ मध्यकाल के दिगंबर लेखक दोनों की सेनाओं के युद्ध का भी उल्लेख करते हैं । हिंसक युद्ध से विरत होने के लिए विभिन्न रचनाकारों ने विविध विकल्प दिये हैं - कहीं बाहुबलि स्वयं अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव करते हैं तो कहीं मन्त्रीगण और कहीं देवगण एवं इन्द्र अहिंसक युद्ध के रूप में दृष्टि युद्ध, बाहुयुद्ध आदि का प्रस्ताव करते हैं । अत: इस सम्बन्ध में किसी एक परम्परा की कोई विशिष्ट अवधारणा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता । आवश्यकचूर्णि तथा चउपन्न महापुरिस चरियं में बाहुबलि स्वयं अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहते हैं - 'किं अणवराहिणा लोगेण मारिएण? तुमं अहं दुयगा जुज्झामो ।' निरपराध लोगों को मारने का क्या औचित्य है ? तुम और मैं दोनों ही परस्पर युद्ध करें । विमलसूरि के पउमचरिउ में भी युद्ध में हिंसा के दृश्य को देखकर बाहुबलि कह उठता है- 'चक्कहरो किं वहेण लोयस्स ? दोण्हंपि होउ जुज्झं ।' हे चक्रवर्ती ! लोगों का वध करने से क्या लाभ ? क्यों न हम दोनों ही लड़ लें ? इस प्रकार बाहुबलि के द्वारा स्वयं अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव प्रस्तुत करवा कर उसकी गरिमा को ऊँचा उठाया गया । यद्यपि हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में देवता दोनों सेनाओं के संग्राम से जनहानि की कल्पना कर दोनों के पारस्परिक अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव लेकर दोनों के पास जाते हैं और दोनों ही उसे स्वीकार कर लेते हैं । इसी प्रकार भरतेश्वर बाहुबलि रास और भरतेश्वर बाहुबलिवृत्ति में देवगण ही यह प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं । दिगम्बर परम्परा में जिनसेन के आदिपुराण में तथा स्वयम्भू के पउमचरिउ में अहिंसक युद्ध का प्रस्ताव मन्त्रीगण रखते हैं, किन्तु रविषेण के पद्मपुराण में स्वयं बाहुबलि ही यह प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं ।

भरत का दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध आदि में पराजित होना, अपनी पराजय से लज्जित एवं दु:खी होकर आवेश में बाहुबलि पर चक्र चला देना, चक्र का वापस हो जाना, भरत के इस अकृत्य को देखकर बाहुबलि को वैराग्य हो जाना और युद्धभूमि में स्वयं ही दीक्षा लेकर वन-प्रांतर में ध्यानस्थ हो जाना, ऐसी सामान्य घटनाएं हैं, जिनका वर्णन श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा के आचार्यों ने समान रूप से किया है ।

बाहुबलि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में जिस प्रश्न पर श्वेताम्बर एवं दिगंबर परम्परा में मतभेद पाया जाता है, वह है बाहुबलि के साधनाकाल में मान की उपस्थिति और ब्राह्मी और सुन्दरी के उद्‌बोधन से उसकी निवृत्ति । श्वेताम्बर परम्परा में विमलसूरि के पउमचरिउ के अतिरिक्त वसुदेवहिण्डि, आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक भाष्य, विशेषावश्यक भाष्य, कल्पसूत्र टीका, चउपन्नमहापुरिसचरियं, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, भरतेश्वर बाहुबलि रास, भरतेश्वर बाहुबलिवृत्ति, भरत बाहुबलि महाकाव्य एवं परवर्ती सभी राजस्थानी एवं हिन्दी में रचित भरत-बाहुबलि के जीवन चरित्रों में यह बात समान रूप से स्वीकार की गई है कि बाहुबलि दीक्षा लेकर ध्यानस्थ हो गये और यह निश्चय कर लिया कि कैवल्य प्राप्त किये बिना भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में नहीं जाऊँगा । असर्वज्ञ दशा में भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में जाने में बाहुबलि की कठिनाई यह थी कि उन्हें अपने से पूर्व दीक्षित छोटे भाइयों को भी प्रणाम करना होगा । और ऐसा करना उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं लग रहा था । इस समस्या के समाधान का रास्ता यही था कि सर्वज्ञता या वीतराग दशा को प्राप्त करके हीं ऋषभदेव के समवशरण में पहुँचा जाए, ताकि छोटे भाइयों को वन्दन करने का प्रश्न ही उपस्थित न हो । सभी श्वेताम्बर आचार्यों ने साधनाकाल में न केवल बाहुबलि में मान की उपस्थित को स्वीकार किया, अपितु सभी ने इस घटना का भी उल्लेख किया है कि भगवान् ऋषभदेव की प्रेरणा से ब्राह्मी और सुन्दरी बाहुबलि को उद्‌बोधित करने हेतु जाती हैं और जाकर कहती हैं- हे भाई, हाथी पर से नीचे उतरो, हाथी पर चढ़े हुए केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होता है । एक राजस्थानी कवि ने इसे निम्न शब्दों में बाँधा है -

वीरा म्हारा गज थकी उतरो,
गज चढ्या केवल नहीं होसी रे ।

उनके इस उद्‌बोधन को सुनकर बाहुबलि का विवेक जागृत होता है, वे विचार करते हैं, निश्चय ही मैं अहंकार रूपी हाथी पर सवार हूँ । पहले जन्म लेने मात्र से कोई बड़ा नहीं हो जाता है, मेरे लघुभ्राताओं ने अध्यात्म की साधना में मुझसे पहले कदम रखा है, निश्चय ही उनका विवेक मुझसे पहले प्रबुद्ध हुआ है, अत: वे वन्दनीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, मुझे जाकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए। यह विचार करते हुए, जैसे ही बाहुबलि लघुभ्राताओं के वंदन हेतु जाने के लिये अपने चरण उठाते हैं, कैवल्य प्रकट हो जाता है।

सभी श्वेताम्बर आचार्यों ने बाहुबलि के जीवनवृत्त में इस घटना का उल्लेख अवश्य किया है। इस सम्बन्ध से उनमें कोई मतभेद नहीं देखा जाता है जबकि दिगम्बर आचार्यों में इस घटना के सम्बन्ध में भी मतभेद देखा जाता है। प्रथम तो इस प्रश्न पर ही कि बाहुबलि को साधनाकाल में शल्य था, वे एकमत नहीं हैं। जिनसेन ने आदिपुराण में और रविषेण ने पद्मपुराण में शल्य का उल्लेख नहीं किया है; जबकि कुन्दकुन्द ने भाव पाहुड में एवं स्वयम्भू ने पउमचरिउ में शल्य का उल्लेख किया है। बाहुबलि में कषाय था, इस तथ्य का दिगम्बर परम्परा में प्राचीनतम उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ 'भाव पाहुड' की गाथा ४४ में मिलता है। किन्तु यह 'मान' कषाय किस बात का था, इसका स्पष्टीकरण उसमें नहीं है। दूसरे जिन दिगम्बर आचार्यों ने शल्य की उपस्थिति का उल्लेख किया है, वे भी इस घटना को श्वेताम्बर आचार्यों से नितांत भिन्न रूप में प्रस्तुत करते हैं - भरत भगवान् ऋषभदेव से पूछते है कि बाहुबलि को कैवल्य प्राप्ति क्यों नहीं हुई ? भगवान् उत्तर देते हैं कि उसके मन में यह कषाय है कि भरत की धरती पर हूँ। भरत स्वयं बाहुबलि के पास जाकर कहते हैं कि धरती तुम्हारी है मैं तो तुम्हारा किंकर हूँ (पउमचरिउ-स्वयम्भू ४/१४)। भरत के इन वचनों को सुनकर बाहुबलि को केवल ज्ञान हो जाता है। कुछ दिगम्बर आचार्यों ने यह भी उल्लेख किया है कि भरत ने जाकर जैसे ही बाहुबलि की पूजा की, उनका शल्य दूर हो गया और उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। श्वेताम्बर आचार्यों ने तो स्पष्टरूप से बाहुबलि में मान या अहंकार की उपस्थिति बतायी है किन्तु दिगम्बर आचार्यों ने भरत की धरती पर होने के जिस शल्य का उल्लेख किया है उसे या तो हीन भाव (शल्यग्लानि) मानना होगा या भरत के प्रति आक्रोश मानना होगा। इस प्रकार दोनों ने शल्य की व्याख्या भिन्न-भिन्न रूपों में की है।

शल्य की निवृत्ति की व्याख्या भी दोनों परम्पराओं में भिन्न रूप में की गयी है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार जहाँ शल्य निवृत्ति भरत के द्वारा की गई क्षमा याचना या पूजा से होती है। वहाँ श्वेताम्बर परम्परा में शल्य की निवृत्ति अपनी संसार पक्ष की बहनों तथा भगवान् ऋषभदेव की प्रधान आर्यिका ब्राह्मी और सुन्दरी के उद्‌बोधन से होती है। किसी आर्यिका द्वारा श्रमण साधक के उद्‌बोधन की दो प्रमुख घटनाएँ श्वेताम्बर साहित्य में हमें उपलब्ध होती हैं। एक ब्राह्मी और सुन्दरी के द्वारा बाहुबलि का उद्‌बोधन और दूसरा राजीमती के द्वारा रथनेमि का उद्‌बोधन। जबकि दिगम्बर परम्परा में आर्यिकाओं के द्वारा श्रमणों के उद्‌बोधन के प्रसङ्गों का अभाव सा ही है। यद्यपि श्री लक्ष्मीचन्द जैन ने 'अन्तर्द्वन्द्वों के पार' नामक पुस्तक में यह उल्लेख किया है कि भरत भगवान् ऋषभदेव से बाहुबलि में शल्य की उपस्थिति को जानकर स्वयं अयोध्या आते हैं और वहाँ से ब्राह्मी एवं सुन्दरी को लेकर बाहुबलि के समीप जाते हैं, बाहुबलि की पूजा करते हैं और दोनों बहनें बाहुबलि को उद्‌बोधित करती हैं कि 'भाई हाथी से नीचे उतरो', किन्तु श्री लक्ष्मीचन्द जी के इस कथन का आधार दिगम्बर परम्परा का कौन सा ग्रन्थ है, मुझे ज्ञात नहीं। पुन: उन्होंने भी ब्राह्मी और सुन्दरी को श्राविका के रूप में प्रस्तुत किया है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा में ये साध्वी के रूप में बाहुबलि को उद्‌बोधित करती हैं।

इस तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बाहुबलि के इस कथानक को दोनों ही परम्पराओं ने अपनी-अपनी धारणाओं के अनुरूप मोड़ने का प्रयास किया है। फिर भी बाहुबलि की रोमांचकारी कठोर साधना का, जो चित्रण दोनों परम्परा के आचार्यों ने किया है, वह निश्चय ही हमें महापुरुष के प्रति श्रद्धावनत बना देता है। जो अन्तर और बाह्य दोनों युद्धों में अपराजेय रहा हो। ऐसा व्यक्तित्व निश्चय ही महान् है। बाहुबलि सर्वतोभावेन अपराजेय सिद्ध हुए हैं। एक ओर चक्रवर्ती सम्राट् को पराजित कर वे अपराजेय बने हैं, तो दूसरी ओर स्वयं प्रबुद्ध हो एकाकी साधना के द्वारा कर्म शत्रुओं को पराजित कर उन्होंने अपनी अपराजेयता को सिद्ध किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org